ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 193-194
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

गीता का कर्मयोग एवं उसकी प्रासंगिकता

डॉ0 मानस दुबे

सहायक प्राध्यापक, एस.बी.टी.कॉलेज (अटल बिहारी बाजपेयी विश्वविद्यालय) बिलासपुर, (छत्तीसगढ) भारत

सारांश : गीता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी है। यह हिन्दू धर्म का प्रधान स्तम्भ है। हमारी संस्कृति के सभी मौलिक सिद्धांत स्पष्टतः अथवा सूत्र रूप में गीता से मिलते हैं। संसार में कोई दूसरा शास्त्र नहीं है जिसमें जन्म और मृत्यु, आत्मा और परमात्मा तथा कर्म और योग का सुन्दर प्रतिपादन किया हो। गीता का कर्म, गीता का ज्ञान, गीता का ध्यान और गीता की भक्ति सभी सर्वथा पापशून्य, दोषरहित एवं पवित्र है। श्री राधाकृष्णन जी ने कहा है 'गीता जीवन की सर्वोच्च लक्ष्यों को हृदयंगम करने में महत्वपूर्ण सहायता देती हैं।'

मनुष्य का लक्ष्य कर्म है तथा संसार कर्म भूमि है। एक क्षण भी मनुष्य इस कर्मभूमि पर बिना काम के नहीं रह सकता

नहि करियव्वाणमापि जतु तिष्ठत्यककर्मकृत।
कार्यते हायशः कर्म सर्व प्रकृति जै गुंणः ।।[1]

अतः मनुष्य को सतत् कर्मशील रहना चाहिए। बुद्धि और सत्य के मार्ग को अपनाकर सदाचार से अपना काम करना चाहिए। लौकिक और परलौकिक आनंद के लिए मनुष्य को सर्वदा निष्काम भाव और कर्तव्य, बुद्धि से प्रेरित होकर कर्म करना चाहिए। सन्यास (संख्य योग) और कर्मयोग दोनों ही श्रीकृष्ण भगवान जी के अनुसार कल्याणकारी है परंतु इनमें भी कर्मयोगी ही श्रेष्ठ है।

संन्यासः कवियोगश्य निःत्रोयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्म सन्यासतू कर्मयोगो विशिष्टयते।।[2]

कर्मयोग ज्ञान से श्रेष्ठ है। लोककल्याण के लिए कर्म करनेवाला ही कर्मयोगी है। अवश्य ही व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊँचे उठकर लोक कल्याणार्थ कर्म करनेवाला श्रेष्ठ है कल्याण करने की शक्ति योग अर्थात् कर्मयोग में है। कर्मयोग सुक्ति का स्वतंत्रा साधन है। कर्मयोगी साधक जन्म–मरण से रहित होकर अमृतमय परमपद को प्राप्त हो जाता है।

जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छ न्यनामयत् ।[3]

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि है अर्जुन कर्म करने में ही अधिकार है. पफल में कदापि नहीं। अतः तू कर्मफल का हेतु भी मत बन तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा पफलेषु कदाचन।
मा कर्मपफलहेतुर्मूर्मा ते सडोडस्त्वकर्मणि ।।[4]

कर्म करना मनुष्य के अधीन है और होना परमात्मा के अधीन है। अतः मनुष्य को परमात्मा से जो कुछ भी मिलता है उसे दूसरों की सेवा में लगाना चाहिए। कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता है कि मैं अपने कर्मों के बलपर उस चीज को पा ही लूंगा जो मैं चाहता हूँ। उदाहरण स्वरूप कृषक खेत में बीज बोता है परंतु अनाज उत्पन्न होना उसके हाथ में नहीं है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, पाला, ओला, अन्य प्रकृति प्रकोप से फसल नष्ट भी हो सकता है। फिर भी किसान अपने खेत में बीज बोता है। यह उनका कर्तव्य कर्म है। उसके कर्म प्रेरक ईश्वर है। वह उनकी आराधना करता है और स्वकर्म का पालन करता है। इस प्रकार सब सुख–दुख लाभ–हानि, जय–पराजय को समान समझकर भगवान के साथ योगयुक्त होकर कर्म करना ही गीतोक्त कर्मयोग है। ऐसा न करने से पाप की संभावना होती है।

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभी जयाजयी।
उठो युद्धाय सृज्यस्व नैवं पापवात्स्यसि।।[5]

निःसंदेह गीता के कर्मयोग में भगवान की भक्ति है। यहां आसक्ति रहित होकर दूसरों के हित के लिए कर्म करने को कहा गया है। ऐसा करने से मनुष्य संसार–बधन से मुक्त होकर परमात्य तत्य को प्राप्त करता है।

तस्मादक्तरू सततं कार्य कर्म समाचार।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।[6]

उस परमात्मा में चित्त को लगाकर कर्म करना चाहिए। मक्त का वित्त भगवान को छोड़कर कहीं नहीं रमता। उसके लिए परमेश्वर की सर्वस्व है। उसकी सपूर्ण घेष्टाएँ उनके लिए ही होत है। कर्मशील व्यक्ति कर्तव्य प्राप्त धन मन इत्यादि के लिए भी कर्म करता है परंतु उनका लक्ष्य इस कर्म द्वारा भगवद् प्राप्ति ही है। वह शुद्ध अन्तःकरण से भगवत्माव से सुक्त होकर शास्त्राविहित विषयों को भोगता है, जिसका ध्येय भगवान है, भोग नहीं। गीतोक्त मंयोग का स्वरूप है।

योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा ध्नज्जय ।
सिद्धय सिद्धयो रू समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।[7]

'हे ध्नजय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्धि असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मो को कर, क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि राग द्वेष के न रहने पर जो समता आती है उसमें स्थित है होकर अपने कर्तव्य कर्मो को करना चाहिए। कर्मयोग की महत्ता तो इसी से सिद्ध होती है कि स्वयं ईश्वर भी अवतार है काल में सदा कर्तव्य कर्म में लगे रहते हैं, क्योंकि व्यक्ति सि सर्वदा श्रेष्ठा मनुष्य के मार्ग का ही अनुसरण करता है। अतः भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कार्यशील होकर दूसरों के लिए सं आदर्श प्रस्तुत किया है। ष्वासुदेव सर्वम् यह गीता का सर्वोच्च सिद्धान्त है। सब कुछ परमात्मा ही है, ऐसा अनुभव ईश

अनुरूपी लेखक

करना ही असली शरणागति है। यही प्रभु के प्रति सच्ची निष्ठा है। भक्ति है। सृष्टि के पहले भी परमात्मा थे, अब भी परमात्मा हैं तथा अन्त में भी परमात्मा ही रहेंगे। उनकी पूर्णता नित्य और अनन्नत है। ईशावास्योपनिषद् में भी इसी सत्य को दर्शाया गया है।

ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णत् पूर्णमु द्रच्ये।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।[8]

परम ब्रह्म पुरूषोत्तम सदा सर्वदा परिपूर्ण है। ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति हुई है। अतः यह जगत भी पूर्ण ही हैं। इस प्रकार परिब्रह्मा की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बचता है। अतः उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, परमात्मा, की शरण में जाना चाहिए। उनका आश्रय लेने वाला संपूर्ण कर्तव्य कर्मो को करता हुआ परमपद को प्राप्त हो जाता है। अतः निरंतर भगवान् का चिंतन करते हुए निष्काम भाव से कर्तव्यकार्मे को करना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि ष्हे अर्जुन ! इसलिए तू सर्वदा मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध (स्वधर्म साधन) कर। इस प्रकार मुझमें मन बुद्धि अर्पित करनेवाला तू निःसंदेह मुझसे ही प्राप्त होगा।'

तस्तात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्तर युद्धय च।
मटयर्पितमनोबुद्धिर्या मेवेष्यस्य संशयम् ।।[9]

अतः मनुष्य को नित्य निरंतर ईश्वर का स्मरण करना चाहिए। जीवन का सपफलता अर्थात् जीवन को चरम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। कर्म योग से ईश्वर की पूजा होती है और उसका पफल प्राप्त होता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गीता का सार चिंतन ही व्यक्ति को कर्मयोगी बनाने के लिए है। परंतु वह हमें निष्काम एवं त्यागमय कर्म करने की शिक्षा देती है. जिसका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। यह कर्मयोग शुद्ध भगवदभिमुखी है। आधुनिक कर्मवाद भोगभिमुखी है। इस कर्म प्रवृति में राग, द्वेष, घृणा, काम, क्रोध, लोभ, पाप इत्यादि दोष रहते है। अतः कर्मानुसार पफल की प्राप्ति न होने पर व्यक्ति विषादग्रस्त हो जाता है उसे मार्गच्युत होने का भय होता है। अगर गीता की शिक्षा का ह्रदयंगम किया जाये तो ऐसी स्थिति कभी भी नहीं आ सकती। सतत् गलत कार्यों में लगे लोगों को कर्मयोगी की उपाधि देते हैं। निष्काम कर्मयोगी संपूर्ण कर्म परमात्मा को अर्पित करके कर्म करता है।

यो व्यक्ति ईश्वर के प्रति संपूर्ण भाव रखता है ईश्वर अपनी दिव्य दृष्टि से उसके मार्ग को सदा आलोकित करता है और वह अदम्य उत्साह, अतुल तेज, नवीन स्पफूर्ति तथा तीव्र बुद्धि से सम्पन्न होकर उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य करने की शिक्षा देता है।

वास्तव में गीता वह दिव्य प्रकाश स्तम है. जो विविध उलझनों में पफंसे लोगों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करती है। सबको प्रकाश देती है। सबका हित करती है। जितना गीता प्राचीन होता चला जा रहा है उसमें उतना ही नित्य नवीनता आती जा रही है। तभी तो गीता एक सन्यासी के हाथ में रहता है क्रांतिकारी विचारों से युक्त व्यक्ति के हाथों में कदापि नहीं। कि इस संबंध में गाधी जी ने कहा है श्जो मनुष्य गीता का भक्त होता है उसके लिए निराशा की कोई जगह नहीं है. वह हमेशा आनन्द में रहता है। मेरी भी गीता के संबंध में उपरोक्त राय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीता. 3/5.
2. वही, 5/2.
3. वही, 2/51.
4. वही, 2/47.
5. वही, 2/38.
6. वही, 3/19.
7. वही, 2/28.
8. ईशावस्त्रोपनिषद्–शांति पाठ.
9. गीता, 8/7.

*****